सम्पादकीय

भारतबोध का लीला लोक

आचार्य (डॉ.) चन्दन कुमार

जब हम भारतबोध पर विचार करते हैं, तो सबसे पहले यह जिज्ञासा मन में आती है कि भारतबोध क्या है? भारत क्या है? भारतबोध पर विचार करते समय हमारा उद्देश्य किसी तात्कालिक राजनीतिक विमर्श का समर्थन या प्रतिवाद करना नहीं है अपितु उस दीर्घकालिक सांस्कृतिक चेतना को समझना है, जिसके भीतर भारत स्वयं को हजारों वर्षों से जानता और जीता आया है। 'भारत क्या है?' - यह प्रश्न केवल भूगोल, संविधान या शासन-व्यवस्था का प्रश्न नहीं है; यह स्मृति, सातत्य, कला, लीला, भक्ति और समाज-केंद्रित जीवन-दृष्टि का प्रश्न है। 'भारतबोध' पत्रिका का यह अंक इसी प्रश्नाकुलता से जन्म लेता है कि भारत को किन शब्दों, किन अनुभवों और किन सांस्कृतिक सूत्रों से समझा जाए। क्या भारत को पश्चिमी 'नेशन-स्टेट' की संकीर्ण शब्दावली में बाँधा जा सकता है, या फिर भारत एक जीवंत सभ्यता है, जिसकी आत्मा लीला, कला और सनातन चेतना में निरंतर स्पंदित होती रही है? इस अंक को इन प्रश्नों के आलोक में ही पढ़ा और समझा जाना चाहिए।

लीला क्या है? लीला लोक क्या है? भारतबोध का लीला लोक क्या है? लीला और कला के माध्यम से हमारा समाज और हमारे लोगों ने भारतबोध को कैसे संजोया है? सनातन, लीला, कला और भारत के बीच के संबंध को कैसे पढ़ा जाए? क्या भारत की सातत्यता के सूत्र सनातन की सातत्यता के पाठ से गुम्फित हैं? प्रश्न यह भी है कि इस सनातन की सातत्यता को हम पढ़े कैसे? सत्य यह है कि लीला, कला और धर्मभाव की यह सातत्यता ही भारतबोध है। इस भारतबोध को जिन तत्वों ने संभव किया, वे संत हैं, कवि हैं, मठ और सत्र हैं, मंदिर और नामघर हैं, संस्कृत है। गुरु, वैद्य और पुरोहित की सामाजिक वैधता भारत होने को संभव करती है। भारत राजनीतिक, भौगोलिक, प्रशासनिक इकाई होने से पूर्व एक सांस्कृतिक अवधारणा है। हमारा राष्ट्र हमारे सांस्कृतिक बोध की निष्पत्ति है। सत्य, अहिंसा, परोपकार, क्षमा जैसे गुणों के साथ यह राष्ट्र ज्ञान में रत रहा है, इसीलिए यह 'भा-रत' है। भारतबोध को इन्हीं भक्ति, सत्य, अहिंसा, परोपकार, क्षमा, कला और लीला के उत्तराधिकारी के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। भारत की आत्मा सनातन है। भारतबोध एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है। यह विशिष्ट आध्यात्मिक गुण भारतीय को सारे संसार से पृथक करता है। भारत लीला की भूमि रही है। लीलाधर ने यहाँ कुरूक्षेत्र में गीता का उपदेश दिया है । भारतबोध को लीला के परिप्रेक्ष्य में समझना ही भारतभाव को समझना है, भारत के लोगों को समझना है, भारत के समाज को जानना है।

पर्यटन, तीर्थाटन, यात्रा और परोपकार भारत होने के बोध को सुनिश्चित करते हैं। "हमारा राष्ट्र राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक अवधारणा से बना है। सत्य, अहिंसा, परोपकार, क्षमा जैसे गुणों के साथ यह राष्ट्र ज्ञान में रत रहा है, इसलिए यह 'भा-रत' है।"[1] कुल मिलाकर भारत जीवन का वैष्णव भाव है। भारतीयता से एक विशेष भावबोध होता है। भारत हर उस व्यक्ति की भूमि है जो इसे अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि मानता है, जो इसके इतिहास से ख़ुद को

1. भारतबोध का नया समय :- प्रो. संजय द्विवेदी, पृष्ठ-23, यश पब्लिकेशंस नई दिल्ली, भारत, 2022

जोड़ता है, जो इसके सुख-दुख और आशा-निराशा के साथ जय में खुश और पराजय में दुखी होता है। भारत को यह भाव वैष्णव दाय में मिला है। यह वैष्णवभाव सातत्यता है। सातत्यता सनातन है। यह सनातनता गाँधी का वैष्णव जन है, यही श्रीमंत शंकर देव का 'प्रथम प्रणामे, ब्रह्मरुपी सनातन' है। यही कालिदास के मेघ की यात्रा है। कालिदासम कृत मेघदुतम् में पूर्व मेघ यक्ष बादल को रामगिरी से अलकापुरी तक के मार्ग का विवरण देता है–उत्तर-पूर्व के हिमालय से लेकर उत्तर-पश्चिम तक के हिमालय की यात्रा। 'आर्य: सप्त-सैन्धव' की परिकल्पना इसी भारतभाव की परिकल्पना है। भारत अध्यात्म और चेतना की भूमि है। विश्व की अन्य सभ्यताओं से इतर भारत की एक अलग स्थिति है। दुनिया के तमाम विचारों की सांस्कृतिक चेतना जड़वादी है जबकि भारत की चेतना जैविक है। इसलिए भारत आज भी भारत है, क्योंकि वह जड़ और हठी नहीं है। तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती द्वारा शिवाजी पर कविता लिखना, सुदूर उत्तर-पूर्व की कार्बी आंगलोंग समुदाय द्वारा रामकथा का छाविन आलुन रामायण के रूप में गायन, खामती जनजाति का खामति रामायण हो असमिया का माधवकंदली रामायण, शंकरदेव, माधवदेव, बदला पद्माता की रचनात्मकता, ब्रजबुली का भाषा संस्कार, मणिपुर का गोबिंद मंदिर, त्रिपुरा के जमातिया समुदाय का जनेऊ धारण और मृत्यु संस्कार इसी भारतभाव के चिन्ह हैं। संकेत यह है कि सेमेटिक गुलामी के एक लंबे इतिहास के बावजूद एक सांस्कृतिक चेतना जो - 'उत्तरं यत्ससमुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्, वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संतति' की रही है। इसी अर्थ में चीनी यात्री व्हेनसांग आसेतु हिमालय, इस क्षेत्र और यहाँ के लोगों को 'हिन्तु' कहकर पुकारता है। गुरु गोविन्द सिंह जी कहते हैं 'जगे धर्म हिन्दू सकल भंड भाजे'। "भारतीय दर्शन संपूर्ण जीव सृष्टि का विचार करने वाला दर्शन है। संपूर्ण समष्टि का ऐसा शाश्वत् चिंतन किसी भूमि में नहीं है। यहां आनंद ही हमारा मूल है। परिवार की उत्पादकीय संपत्ति ही पूंजी थी। चाणक्य खुद कहते हैं, 'मनुष्यानां वृत्ति अर्थ।' इसलिए भारतीय दर्शन योगक्षेम की बात करता है। योग का मतलब है- अप्राप्ति की प्राप्ति और क्षेम का मतलब है-प्राप्त की सुरक्षा। इसलिए चाणक्य कह पाए, 'सुखस्य मूलं धर्म: धर्मस्य मूलं अर्थ:/ अर्थस्य मूलं राज्यं।"[2]

भारत क्या है?- एक बात तो स्पष्ट है कि भारत सत्ता नहीं है। भारतबोध को आप सत्ता की केन्द्रीयता में नहीं पढ़ सकते हैं। भारत ज्ञान को राजसत्ता की साधना के लिए प्राप्त नहीं करता है। ज्ञान और त्याग का एक अन्योन्याश्रय पाठ भारत के बोध का केन्द्रीय पाठ है। संयासी इसी पाठ का मूर्त रूप है। सन्यास समाज की व्यवस्था और पद्धति से इतर ज्ञान की समाजकेंद्रीयता का पाठ है। सन्यासी का कोई वर्ग/वर्ण नहीं होता। सन्यासी का कोई कुल/गोत्र नहीं होता। सन्यासी मनुष्य द्वारा बनाई गयी किसी भी व्यवस्था से मुक्त होता है। सन्यासी भारत की साधना का कर्मफल विरक्त पाठ है। यही कर्मफल विरक्ति और समाज की केन्द्रीयता भारतबोध का मूल तत्व है। इसी कर्मफल विरक्ति और समाज केन्द्रीयता के कारण भारत विश्व में जहाँ भी गया सहभागिता के भाव से गया। भारत विजयी होने का भाव नहीं है। भारत काल की नश्वरता को स्वीकारते हुए परदु:खकातरता का भाव है। भारत नेकी है, भारत देश-देश घूमना है, भारत शरीर की नश्वरता है, भारत उत्सव है। मैं इन दिनों ब्रजक्षेत्र में सक्रिय हूँ। मथुरा के एक कवि हैं- 'ग्वाल'। वे रीतिकाल के अंतिम आचार्य माने गये। ग्वाल का जीवनकाल सन् 1802 ई.- सन् 1867 ई. है। ग्वाल सोलह भाषाओं के ज्ञाता थे। ग्वाल ने अपने जीवन में विपुल यात्राएं कीं। उनकी पंक्ति है –

"'दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि
खाव पियो, देव लेव, यहीं रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भए
कहाँ ते कहाँ को गए, लग्यो न ठिकाना है।

2. भारतबोध का नया समय :- प्रो. संजय द्विवेदी, पृष्ठ-23, यश पब्लिकेशंस नई दिल्ली, भारत, 2022

ऐसी जिंदगानी के भरोसे पे गुमान कैसो
देस देस घूमी घूमी मन बहलाना है।
आए परवाना पर चले न बहाना यहाँ
नेकी कर जाना है, फेर आना है न जाना है।"[3]

भारत क्या है? भारत यात्राबोध है। भारत देश-देश घूमना है। भारतीय बोध में जीवन, यात्रा है। भक्ति के स्वभाव को समझना हो, लीला को समझना हो ,तो इस यात्राबोध को समझना होगा। आदिशंकर से लेकर ग्वाल तक भारतयात्रा का पाठ चिह्नित किया जा सकता है। शंकराचार्य केरल से निकलते हैं, रामेश्वरम व् श्रृंगेरी आते हैं, फिर द्वारिका पधारते हैं और आगे पुरी और गुवाहाटी तक पहुँचते हैं और अंत में बद्रीनाथ केदारनाथ जाते हैं। रामानुजाचार्य ने कर्नाटक, पुरी, दिल्ली और ब्रज क्षेत्र तक की यात्रा की। शंकर के दिग्विजय के पश्चात् रामानुज भी यात्रा करते हैं। स्वामी रामानंद जी ने कश्मीर से कन्याकुमारी तथा द्वारिकापुरी से जगन्नाथपुरी तक संपूर्ण तीर्थों का दर्शन करते हुए समस्त भारत का भ्रमण किया। करीब 700 साल पहले संत शिरोमणी नामदेव महाराज शांति, समता और बंधुता का संदेश देते हुए महाराष्ट्र के पंढरपुर से मेड़ता होते हुए पंजाब के घुमान तक पहुंचे और बीस वर्ष रहे। यह दो हज़ार किलोमीटर की यात्रा थी। नानकदेव का यात्राबोध तो और भी विशिष्ट है। उन्होंने चार उदासी में कुल सत्तर हज़ार किलोमीटर की यात्रा की। इसी तरह चैतन्य महाप्रभु बंगाल से होते हुए वृन्दावन और फिर जगन्नाथपुरी तक गये। मीरा ने दस प्रान्तों की यात्रायें कीं। शंकरदेव ने असम से चलकर ब्रजक्षेत्र होते हुए दक्षिण तक की यात्रा की। इन संतों की यह यात्रा क्या कहती है? दरअसल इन संतों की यह यात्रा भारत को समझने का पराक्रम है। यह स्मृतिभ्रंश का प्रतिपक्ष है। दुनिया में सेमेटिक शक्तियां जहाँ भी गईं, उन्होंने पराजित देशों की स्मृति को नष्ट किया। एक सज्जन हुए हैं विद्याधर सूरज प्रसाद दूबे नेपाल–वी.एस नायपाल। पूर्वज पूर्वांचल से गिरमिटिया मजदूर होकर त्रिनिदाद गये। नेपाल स्ट्रीट पर रहते थे, स्वयं का नाम था विद्याधर, पिता का नाम था सूरज प्रसाद दूबे तो पूर्ण नाम हुआ विद्याधर सूरज प्रसाद दूबे नेपाल। जब लंदन गये तो नेपाल से नायपाल हो गये। इस प्रकार कुल नाम पड़ा विद्याधर सूरज प्रसाद दूबे नायपॉल- वी.एस. नायपॉल। उनकी एक पुस्तक है 'इंडिया अ वुंडेड सिविलाइज़ेशन'। पुस्तक दुनिया की एक ताकतवर सेमेटिक मान्यता- इस्लाम को स्मृतिभ्रंश के अपराध का दोषी ठहराती है।"[4] सेमेटिक मान्यताओं ने जब पराजित देशों की सत्ताओं को अपने अधिकार में लिया तो लीला,कला और साहित्य स्मृतिभ्रंश का प्रतिपक्ष बन गए। भारत की स्मृति की लीलाकला केन्द्रीयता का एक उदाहरण मैं दे रहा हूँ। मेरी एक मित्र हैं मोनिका चंदा। मेघालय के शिलांग में रहती हैं। भरतनाट्यम की नृत्यांगना हैं। चर्चा हुई कि अविभाजित भारत के पूर्वी बंगाल वाले हिस्से की सांस्कृतिक सातत्यता को कला में कैसे पढ़ा जाए? एक सूचना आई कि असम के कर श्रीभूमी जिले के एक मंदिर के पुजारी अपने कुछ स्कूली बच्चों के साथ एक नृत्यविधा की साधना करते हैं। यह नृत्यविधा भारतीय कलाजगत से अब तक अपरिचित थी। इन पुरोहित महोदय का सानिध्य करने से पता चला कि अविभाजित भारत के वर्तमान बांग्लादेश वाले हिस्से के सांस्कृतिक चिन्ह इस नृत्यगान में हैं। यह ओझानाच है जो पद्मपुराण पर आधारित है। पूर्वी बंगाल के सनातन घरों में बिशोरी पूजा होती थी। मानुषमंगल गाया जाता था। देवी आराधना होती थी। ओझानाच उस स्मृति का पाठ है। शोध के उपरांत भूपेन हजारिका द्वारा सन् 1972 में निर्मित एक फिल्म का पाठ भी उपलब्ध हुआ जिसमें ओझानाच के कुछ संदर्भ मिलते हैं। आपसे निवेदन है कि ओझानाच को ओझापाली न समझें। ओझापाली एक अन्य कलाविधा है जो असम के निचले हिस्से में ज्यादा लोकप्रिय है। भारत का भाव, भूगोल और सत्ता से परे का भाव है। यह राजा राव उमराव का भाव नहीं

3. रचनाकार : ग्वाल - संपादक : महालचंद बयेद, पृष्ठ 396, ओसवाल प्रेस, कलकत्ता, 1937
4. इंडिया: ए वाउंडेड सिविलाइज़ेशन (1977)वी.एस. नायपॉल

है। यह सत्ताओं के सर्वग्रासी दौर में कलारूपों में रहा है। गुरु-पुरोहित के रूपों में रहा है। हमारे नृत्यरूप चाहे वह भरतनाट्यम हो, कुचिपुड़ी हो, ओडिसी हो या कत्थक हो- गुरुओं और पौरोहित्य की छत्रछाया में विकसित हुए हैं। भारत ज्ञान की समाज केन्द्रीयता है।

भारत के संदर्भ में जब बोध की व्याख्या की जाती है तब एक वाक्य याद आता है – 'भारत भूमि का एक टुकड़ा मात्र नहीं है, यह एक जीता-जागता राष्ट्रपुरुष है।' इसका क्या अर्थ है? जीता-जागता यानी सजीव, संवेदनशील, बोधवान। भारतबोध की सातत्यता को, विजडम की कंटीन्यूटी को, बोध की सातत्यता को, कला और लीला के संदर्भ में कैसे पढ़ा जाए? वे कौन-से कला और लीला चिह्न हैं जो भारत की इस सातत्यता का पाठ उपलब्द्ध कराते हैं? इससे पहले इस बिंदु पर भी विचार कर लेना उचित रहेगा कि भारत ने अपने को कैसे बरता है? टाइम्स ऑफ इंडिया के एक संपादक हुए हैं गिरीलाल जैन। उनकी एक पुस्तक है - 'द हिन्दू फेनोमेनन'। पुस्तक अमेजन पर उपलब्ध है। पुस्तक का पहला प्रकाशन सन् उन्नीस सौ चौरानवे में हुआ। पुस्तक यूबीएस पब्लिशर्स से छपी है। पुस्तक में छः अध्याय हैं और परिशिष्ट को जोड़ दें तो यह एक सौ पैंसठ पृष्ठ की पुस्तक है। इसका पहला अध्याय है- द सिविलिजेशनल प्रोस्पेक्टिव। उन्होंने एक तर्क चलाया कि "भारत को हम एक सभ्यता के रूप में समझें- एक जीवंत सभ्यता।"[5] स्वामी विवेकानंद, विनायक दामोदर सावरकर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, रविन्द्रनाथठाकुर, मोहनदास करमचंद गाँधी, आनंद केंटिश मुत्थु कुमारस्वामी- सभी अपने चिंतन में भारत को समझने का तर्क देते हैं। यहाँ एक उल्लेख करना चाहूँगा। एक सज्जन हैं- बेनेडिक्ट एंडरसन्। बेनेडिक्ट एंडरसन् एक सामाजिक-राजनैतिक अध्येता और इतिहासकार रहे हैं। कैंब्रिज कोर्नेल में पढ़े हैं। सन् 2015 ई. में उनका देहांत हुआ। उनकी एक पुस्तक है 'इमेजींड कम्युनिटी'। सन् 1983 ई. में पुस्तक का पहला संस्करण वर्सो लंदन से आया। पुस्तक के ग्यारह अध्याय हैं जिसमें वे कल्चरल रूट्स यानी सांस्कृतिक मूल्यों, ऑफिसियल नेशनलिज्म, स्मृति और विस्मृति/ मेमोरी एंड फोर्गेटिंग जैसे विषयों पर विचार करते हैं। एंडरसन् की मान्यता है कि "राष्ट्र एक भौगोलिक राजनैतिक इकाई हो-न-हो, एक अनुभवजन्य इकाई अवश्य है। इसका स्वरूप बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि यह कैसे जिया जा रहा है, कैसे बरता जा रहा है।"[6] स्वयं महर्षि अरविन्द राष्ट्र को एक संस्कृति के रूप में अनुभव करने और जीने की बात करते हैं। हमारा अतीत, व्यतीत नहीं है अपितु जीवन का नवनीत है। यह सनातन भावना है। पाप और पुण्य की अवधारणा, सत्य और असत्य की अवधारणा, हिंसा और अहिंसा की अवधारणा, सात्विकता और सदाचरण (सदाचार) की अवधारणा, सहजता और असहजता की अवधारणा, परमतत्व की अवधारणा, परमतत्व की नजर में बराबर आपके कार्यों का मूल्यांकन होते रहना, अनुशासन की एक वैष्णव व्यवस्था है। हमारा धर्म क्या था? "हिंदुत्व कोई पूजा पद्धति का नाम नहीं है। हिंदुत्व ने एक सेमेटिक रिलिजन की तरह एक नया रिलिजन नहीं है। हिंदुत्व समस्त भाव भावनाओं को एक साथ ले कर चलने वाला महाविधान है। आज तक भारत में कोई भी उदाहरण नहीं है जो कहता हो केवल और केवल मेरे पंथ के लोग सुखी रहेंगे। भारतीय होने की पहचान यह है कि वह समस्त विश्व कल्याण का लगातार संकल्प लेता रहे।"[7] "भारत धर्म भी है और यह धर्म उपासना - पंथों से परे भी। यह धर्म रीति-रिवाजों से परे है। यह धर्म है- मानवीय मूल्यों का, यह धर्म है - मनुष्य के कल्याण की दृष्टि का, यह धर्म है - करुणा से संपन्न जीवन जीने के यत्न का। यह एक ऐसा धर्म है, जो त्याग पर आधारित है। यह एक ऐसा धर्म है, जो आस्था पर आधारित तो है

5. 'द हिन्दू फेनोमेनन - गिरीलाल जैन , यूबीएस पब्लिशर्स, 1994
6. 'इमेजींड कम्युनिटी'-बेनेडिक्ट एंडर, 1983 में पहला संस्करण वर्सो लंदन
7. डॉ कृष्णगोपाल सह सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के वक्तव्य से, https://www.facebook.com/share/r/16aMsDhp3W/?mibextid=wwXIfr

लेकिन यह धर्म विवेकयुक्त आस्था का प्रस्ताव करता है जिसमें अंध आस्था के लिए कोई जगह नहीं बनती है। ऐसा भारत और इस भारत को जानना, इस भारत को सभी कालखंडों में जानते हुए अपने कालखंड में अवस्थित होकर समझना ही भारतबोध है।"[8] वैदिक साहित्य, श्रीमद्भगवद्गीता एवं रामचरितमानस इसी केंद्रीयता के प्रतीक हैं। कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के समन्वय से सत्य और सुंदर की साधना हमारा सांस्कृतिक हेतु रहा है। इस सांस्कृतिक हेतु की निरंतरता हमारे इतिहासबोध को भी बनाती है । इस इतिहासबोध का प्रतिपक्ष भी भारत में देखने को मिला। "भारत केवल भौगोलिक रचना से नहीं बना है और न तो भारतबोध केवल इतिहास से ही बनता है। वस्तुत: भारतबोध एक सनातन की प्रक्रिया है, जो नित्य और निरंतर, इन दोनों के साथ गुंफित होता है। नित्यता से शाश्वत मूल्य आते हैं तो निरंतरता से समय के साथ उनका समंजन होता है। भारतबोध राष्ट्रीयता है, संस्कृति है और धर्म भी है। 'भारतबोध' पद से जो अर्थ अभिहित होता है - वह सनातन और निरंतर सभ्यता की जीवन-प्रणाली का अर्थाभिधान है।"[9] अरुणाचल से लेकर हिमाचल तक का हिमालय और उसका सांस्कृतिक सामाजिक जीवन भारतीय राष्ट्र के बोध को परिभाषित करने का सूत्र देता है। "भारत को जानना, भारत को जीना है, भारत को जीना यानी प्रकाश को जीना है। भारत, जो प्रकाश में लगा हुआ है, प्रकाशित करने में लगा हुआ है और जो प्रकाशित होने में लगा हुआ है, वही भारत है। उस भारत को जानना, उस भारत का बोध अर्थात् प्रकाशवान हो जाना, प्रकाशपुंज हो जाना अपने को प्रकाशित करते हुए, अपने को चैतन्य से आलोकित करते हुए अन्यों को प्रकाशित करना, अन्यों को श्रेष्ठ की ओर नियोजित करना, प्रेरित करना, यही भारतबोध है और यह बोध इतिहास के किसी कालखंड में टिकता नहीं है।"[10]

यह एक सांस्कृतिक राष्ट्र है जिसे हम और आप आज जी रहे हैं। महर्षि वेदव्यास कृत भागवत का एक प्रसंग याद आ रहा है। भागवत के प्रथम स्कन्ध की शुरुआत से पूर्व 'भागवत महात्म्य' है, जिसमें 'नारद भक्ति' संवाद है। नारद भक्ति से पूछते हैं- "काश्चित्वं" "कौन हैं आप?" भक्ति का उत्तर है- "अहम् भक्तिरितिख्याता इमौ में तनयो मतौ। ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ। अर्थात् मैं भक्ति हूँ, ये दोनों मेरे पुत्र हैं। ज्ञान और वैराग्य इनके नाम हैं, ये समय के प्रभाव से क्षीण हो गये हैं।" 'नारद-भक्ति' संवाद का यह समय संदर्भ वृन्दावन का है, वृन्दावन कृष्ण का घर है। है। भक्ति कृष्ण के घर में उदास है और हजारों किलोमीटर दूर प्रागज्योतिषपुर में भक्ति को खुश देखकर उसके स्वर्णिम होने का अहसास होता है। "भारतीय जनमानस आध्यात्मिकता सेसराबोर है और यह परंपरा बहुत प्राचीन एवं विलक्षण है। इसकी व्याप्ति महासागर की तरह है।"[11]

भारतबोध के सूत्रों की उपर्युक्त व्याख्या के उपरांत एक जिज्ञासा है कि भारतीय कला रूपों में इन सूत्रों के पाठ कैसे सुनिश्चित किये जाएँ? मैं तो ईशान भारत (पूर्वोत्तर भारत) के जनजातीय समुदायों के बीच कला और प्रदर्शनकारी कलाओं की दृष्टि से सक्रिय हूँ। मैं कह सकता हूँ कि एक सभ्यता के रूप में भारतबोध के सांस्कृतिक चिह्न हमारी कलाओं, गीत-संगीत और साहित्य में पढ़े जा सकते हैं। जिन जनजातीय समुदायों की आस्था सेमेटिक हो चुकी है उनके भी नृत्य,कला और प्रदर्शनकारी कलारूपों में उनकी सांस्कृतिक स्मृति को पढ़ा जा सकता है। उत्सवधर्मिता सांस्कृतिक स्मृति का एक पाठ है। आप बारपेटा का फाग सुने, मांजुली का रास देखें, मणिपुर की गोविन्द लीला देखें, या नागालैंड के आओ या कोन्याक समुदाय की कथाओं को सुनें, गारो- खासी-जयंतिया के पारंपरिक भोजन एवं आदतों को पढ़ें तो आपको स्मृतिभ्रंश के विरुद्ध प्रामाणिक संदर्भ मिलेंगे। यह संदर्भ भारत की समाज केन्द्रीयता का

8. भारतबोध सनातन और सामयिक, रजनीश कुमार शुक्ल,पृष्ठ-11, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
9. भारतबोध सनातन और सामयिक - रजनीश कुमार शुक्ल, पृष्ठ -10, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
10. भारतबोध सनातन और सामयिक, रजनीश कुमार शुक्ल,पृष्ठ-10, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
11. भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता - डॉ. कृष्णगोपाल, आत्मकथ्य से

संदर्भ है, कला केन्द्रीयता का संदर्भ है, स्मृति सातत्यता का संदर्भ है।

हजार वर्ष गुलामी का दौर रहा। जो लुटेरे आये वो असभ्य बर्बर लोग थे। उनकी सेमेटिक मान्यताओं में तर्क के लिए कोई जगह नहीं थी। उनके लिए हम बुतपरस्त थे। काफिर थे। हमें दुनिया में रहने का हक नहीं था। यानी तलवार की नोक पर उन्होंने अस्मत लूटी। उनकी शब्दावली में जब हमें ही जीने का अधिकार नहीं था तो हमारा ज्ञान, हमारी पुस्तकें, हमारे मन्दिर, हमारी आस्था को कैसे बचे रहने देते!! सन् 1193 ई. में तुर्की आक्रान्ता बख्तियार खिल्जी ने जब नालंदा विश्वविद्यालय को बर्बाद किया तो कहते हैं उस विश्वविद्यालय का पुस्तकालय तीन महीने तक जलता रहा। आयुर्वेद, वेदान्त और बौद्ध दर्शन के नब्बे लाख पांडुलिपियाँ जला दी गयीं। हमारे ज्ञान के केंद्र और उसके वाहक आक्रान्ताओं की घृणा के शिकार होते रहे। ये घृणा सेमेटिक थी। आपको पता है कि सन् 712 ई. में अरब के अल-सकीफ़ नामक बर्बर कबीले के सदस्य मोहम्मद-बिन-कासिम के सिंध के हिन्दू राजा दाहिर पर आक्रमण से लेकर, सन् 1757 ई. के प्लासी के युद्ध में सेमेटिक राजा शिराजुदौला की हार और फिर 22-23 अक्टूबर सन् 1764ई. को बक्सर के पास चौसा में बंगाल के नबाब मीर कासिम, अवध के नबाब शुजाउदौला और मुग़ल बादशाह शाह आलम की संयुक्त सेना की ईस्ट इंडिया कंपनी के हेक्टर मुनरों की सेना से पराजित होने तक यानी 1052 वर्ष इस देश में ज्ञान, अभिनय, लीला और कला का दमन काल है। सन् 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के बाद फिर बक्सर का युद्ध यह तय कर चुका था कि अंग्रेजों का मुकाबला करने वाले नहीं रहे। अंग्रेज समझदार लोग थे। अंग्रेज जानते थे कि घोड़े पर चढ़े हुए पांथिक लुटेरे शासकों को तो उन्होंने निपटा दिया पर असली खतरा गया नहीं है। उन्हें पता था असली खतरा भारतीय मनीषा है। इसीलिए उन्होंने ब्रिटिश घृणा के कुछ चिह्न निश्चित किये। अंग्रेजों को पता था कि भारत पर शासन् करने के लिए भारतीय मस्तिष्क पर शासन करना जरुरी है।

सेमेटिक आक्रमणकारियों की इस सामाजिक और बौद्धिक हिंसा का प्रतिपक्ष भारत भक्ति-चेतना से बनाता है। भक्ति सेमेटिक सत्ता का मुकाबला प्रदर्शनकारी कला के माध्यम से करती है। इस कालखंड में सत्ता विधर्मियों की है। कला और सनातन दोनों सत्ताच्युत हैं। इस कठिन कालखंड में कला और सनातन को भारतीय समाज आश्रय देता है, मंदिर, मठ, सत्र और समाज भारतीय कला और धर्म का आश्रयस्थल बनते हैं। भारत के प्रत्येक क्षेत्र की प्रदर्शनकारी कला चाहे पांडवानी हो, नाचा हो, भाओना हो, अंकिया हो, ओजापाली हो, मोनपा समुदाय का अजीलामो हो, मणिपुर का अभंग हो या, रामलीला-रासलीला- ये सभी कलाएं अपने कथ्य के रूप में भक्ति और लीला को स्वीकारती हैं। इन प्रदर्शनकारी कलाओं का कथ्य भक्ति और लीला है। इन प्रदर्शनकारी कलाओं के नायक राम हैं और कृष्ण हैं। यह सेमेटिक सत्ता के नायकत्व का प्रतिपक्षी नायकत्व तैयार करना है। शक्तिशाली सेमेटिक आक्रान्ता के प्रतिपक्ष में सनातन सत्ता का वैकल्पिक राग रचना है । इसे आप एक उदाहरण से समझ सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास और मुग़ल शासक जलालुद्दीन ख्यात नाम अकबर समकालीन हैं। गोस्वामी तुलसीदास काशी में रामलीला की शुरुआत करते हैं। काशी स्थित रामनगर की रामलीला गोस्वामी तुलसीदास द्वारा ही प्रारंभ की गयी थी। जब रामलीला समाप्त होती है तो गोस्वामी तुलसीदास जयकारा लगवाते हैं- बोलो राजा रामचंद्र की जय। राजनीतिक राजा तो अकबर है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास के राजा राम हैं। इस तथ्य का साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध है कि तुलसी ने अकबर के निमंत्रण को यह कहते हुए ठुकरा दिया कि :

हम चाकर रघुवीर के, पट्यौ लिख्यौ दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार॥

यह साहित्यिक साक्ष्य इस तथ्य का प्रमाण है कि कला और लीला में सेमेटिक प्रतिपक्ष का एक सनातन बोध बनाया। यह सनातन बोध भारतीय जिजीविषा को सुनिश्चित करता है और भारतबोध का लीलाभाव बनाता है। "भारत

की आत्मा सनातन है, भारतीयता केवल एक भौगोलिक परिवृत्त की छाप नहीं, एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है, जो भारतीय को सारे संसार से पृथक करता है।"[12]

लीला क्या है? लीला प्रदर्शनकारी कला है। लीला ईश्वर के तरह दिखना है और यह ईश्वर के तरह दिखना सेमेटिक का प्रतिपक्ष है। लीलामय ईश्वर ही लीलारूप है। उसके दृश्यकर्म और गुणों द्वारा ही लीला का प्रदर्शन होता है। यह विराट सृष्टि भी ईश्वर का लीलाक्षेत्र है। लीला शब्द इतना प्रिय है कि इस शब्द का वाणी से स्फुरण होते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। मनीषियों ने लीला शब्द का प्रयोग अपने-अपने ढंग से किया है। हिंदी विश्वकोश में लीला के कई पर्यायवाची शब्द है जैसे केलि, क्रीड़ा, रहस्यमय व्यापर और मनुष्यों के अनुकरण के लिए ईश्वर के अवतारों का अभिनय, चरित लीला आदि। भारतीय मनीषियों ने इस विश्व को ही ईश्वर का विराट लीलाक्षेत्र माना है। भारतीय मनीषियों की दृष्टि में विश्व का स्पंदन ब्रह्म की लीला ही है। यह विराट विश्व उसी ईश्वर की लीला का कार्यरूप है। इसमें जो क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही है वही उसकी लीला है। "यह खेल है, क्रीड़ा है, विश्व-क्रीड़ा है; परमात्मा का मनोविनोद है। एक बालक की प्रसन्नता, कवि का उल्लास, अभिनेता का आनंद, महान यांत्रिक विश्वस्त्रष्टा का समुल्लास, जो सभी वस्तुओं की चिरनूतन आत्मा है, जो सनातन है, अक्षय है और पुनः स्वयं का सृजता है, आनंद का यह आत्म प्रस्तुतिकरण है, वह ब्रह्म स्वयं लीला है, वही लीलामय है और वही लीला-भूमि है।"[13] भक्तिदर्शन के चिंतन परंपरा के अनुसार लीला का संबंध ईश्वर से है। सनातन भावबोध के अनुसार यह चराचर जगत ईश्वर की लीला का परिणाम है। भक्तिदर्शन की मान्यता है कि संपूर्ण सृष्टि सच्चिदानंद की लीला का परिणाम है। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि श्रष्टा और सृष्टि की मिलन प्रक्रिया का नाम ही लीला है। "लीला के बिना परमात्मा और उसकी रचना को भी समझना संभव नहीं है। लीला ही वह केंद्र है, जो आस्तिक जीवन दर्शन का मूल आधार है। वैष्णव-भावना इस लीला-परिकल्पना पर ही आधृत है।"[14] "भगवान की विलासेच्छा ही 'लीला' है।"[15]

सुबोधिनी में वल्लभाचार्य ने 'लीला' के संबंध में कहा है—'यह व्यापार कार्य के बिना ही निष्पन्न होता है अर्थात् यह कृति तो है परन्तु इससे इसके बाहर कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। उत्पन्न कार्य में कोई अभिप्राय नहीं होता। यदि कोई कार्य होता भी है तो उसमें कर्ता का न कोई उद्देश्य होता है, न उसमें कोई आभास उत्पन्न होता है। यह एक ऐसी विलक्षण कृति है, जिसकी अभिव्यक्ति अंत:करण में पूर्ण आनन्द के उदय का बोध कराती है। यही भगवान् की 'लीला' है।" यही लीला भारतबोध है । मेरी प्रस्तावना है कि भारत को संगठन, सत्ता और सत्ताकेन्द्रित नायकत्व के रूप में नहीं अपितु लीला, कला और समाज केन्द्रित भावबोध के पाठ के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। भारत का यही पाठ भारतबोध है।

इस अंक में संकलित लेख भारतबोध की उसी दीर्घ और सघन सभ्यतागत चेतना का साक्ष्य हैं, जिसे हमने इस संपादकीय में रेखांकित करने का प्रयास किया है। स्वामी विवेकानंद भारत की आत्मा को धर्म के आलोक में पहचानते हैं तो सिस्टर निवेदिता और के. आर. मलकानी पश्चिमी दृष्टि से भारत की आत्मा और हिंदू चेतना को समझने का प्रयत्न करते हैं। श्री अरविन्द और डॉ. के. एम. मुंशी भारतीय संस्कृति की जीवंतता और बाह्य प्रभावों के साथ उसके आत्मसात् करने की क्षमता को उद्घाटित करते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय अखंड भारत को साध्य और साधन दोनों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जबकि डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल 'मातृभूमि' को सांस्कृतिक चेतना के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। विद्यानिवास मिश्र और निर्मल वर्मा भारतीयता और राष्ट्र की खोज को आत्मानुभूति का विषय बनाते हैं। आनंद केंटिश कूमारस्वामी 'माता भारत' के माध्यम से कला और अध्यात्म की अविच्छिन्नता को रेखांकित करते

12 भारतीयता (निबंध) - अज्ञेय, हिंदी समय से उद्धृत

13 ए ग्लासरी ऑफ संस्कृत टर्म्स इन द लाइफ डिवाइन, श्री अरविन्द, सं० 1652 ई.

14 रासलीला तथा रासानुकरण विकास: डॉ. वसन्त यामदग्नि, पृष्ठ 45, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली

15 वल्लभाचार्य, सुबोधनी, श्रीमद्भागवत के 3।7।2

हैं वहीं विल ड्यूरांट और ए. एल. बाशम भारत को एक जीवंत सभ्यता के रूप में देखने का आग्रह करते हैं। क्रिस्टोफर इशरवुड गीता और युद्ध के नैतिक द्वंद्व को आधुनिक संदर्भों में पढ़ते हैं, पॉल ड्यूसेन वेदान्त के लक्ष्य को भ्रांति-निवारण के रूप में समझाते हैं और रेने गुएनो 'हिंदू' शब्द के अर्थ की दार्शनिक गहराइयों तक जाते हैं। ये सभी लेख, भिन्न-भिन्न समय, भाषाओं और दृष्टियों से, एक ही सत्य की पुष्टि करते हैं कि भारत कोई स्थिर संरचना नहीं अपितु स्मृति, लीला, कला और सनातन बोध की निरंतर प्रवहमान सभ्यता है।

अंत में, इस अंक को पाठकों के समक्ष रखते हुए हमारा विनम्र आग्रह है कि वे इसे केवल सूचना या मत-प्रस्तुति के रूप में नहीं अपितु भारत को समझने और जीने के एक सतत् प्रयत्न के रूप में पढ़ें। यह संपूर्ण अंक उन मनीषियों, संतों, विचारकों और साधकों को समर्पित है, जिन्होंने भारत को सत्ता की नहीं, बोध की भूमि के रूप में देखा और जिया। यदि यह अंक पाठक को अपने अतीत से संवाद करने, वर्तमान को समझने और भविष्य के प्रति उत्तरदायी होने की प्रेरणा देता है तो हम समझेंगे कि हमारा श्रम सार्थक हुआ है।

भारतबोध पत्रिका का यह अंक "आइडिया ऑफ़ इंडिया : भारत होने का भाव" विषय पर केन्द्रित है। इस अंक को समृद्ध एवं सारगर्भित स्वरूप प्रदान करने वाले विद्वान लेखकों के प्रति हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। आपके लेखों से यह अंक दृष्टि संपन्न बन सका है।

आदरणीय संपादक-मंडल राकेश कुमार उपाध्याय जी, नरेंद्र शुक्ल जी, दीपक पांडेय जी, अनंत कुमार मिश्र जी, पीयूष कुमार दुबे जी, हंसादीप जी, लावण्या वेम्सानी जी तथा वेदप्रकाश सिंह जी के सहयोग हेतु हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

पत्रिका अंतरराष्ट्रीय संपादक-मंडल के स्वरूप के निर्धारण में सहयोग प्रदान करने हेतु आयरलैंड में भारत के उच्चायुक्त आदरणीय श्री अखिलेश मिश्र जी (IFS) के प्रति हम विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

कॉपीराइट से संबंधित विषयों में मार्गदर्शन एवं सहयोग हेतु गगन गिल जी एवं दयानिधि मिश्रा जी का आभार।

पत्रिका के तकनीकी पक्ष को सुदृढ़ रूप प्रदान करने के लिए यशी मिश्रा जी एवं पवन कुमार जी के परिश्रम हेतु हम धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। परिवार का विशेष आभार। पत्रिका के प्रकाशन हेतु अजय मिश्रा जी एवं यशी मिश्रा जी के प्रति हम अपना विश्वास प्रकट करते हैं।

सादर।

आचार्य (डॉ.) चन्दन कुमार
कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली- 110007
ईमेल: prof.chandankumar@gmail.com